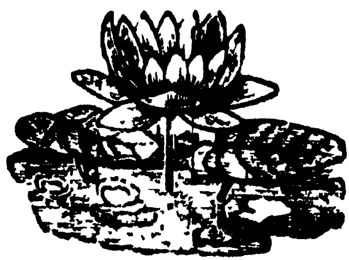
ओ३म्

गोवर्द्धन-ज्योति

(मणिमाला-शतकम्)



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव १९८२ के शुभ अवसर पर 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' की ओर से संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के आर्थिक सौजन्य से स्वाध्याय प्रेमियों के कर-कमलों में सादर सस्नेह भेंट—

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

गोवर्द्धन-ज्योति

[मणिमाला—शतक]

सङ्कलन कर्ता

आत्मदेव विद्यालंकार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार (उ० प्र०)

प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी

मनोविज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उ.प्र.)

अनुवादकः —

ईश्वर भारद्वाज शास्त्री

विद्यालयाश्रमाध्यक्ष हरिद्वार (उ० प्र०)

श्रद्धा साहित्य प्रकाशन

(संघड विद्यासभा ट्रस्ट जयपुर के एक सहस्र रुपये

के दान के सहयोग से)

समर्पणम्

ये हैं वे ब्रह्मचारी जिन के प्रति यह "शतक" समर्पित है और जिन्होंने इसे बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है।

१ अर्जुन कुमार दशम (अल्मोड़ा)
२ नरेन्द्र कुमार नवम (राजस्थान)
३ मुरलीधर नवम (बनारस)
४ भूपेन्द्र नवम (हि० प्र०)
५ राधामोहन नवम (इटावा)
६ सहवीर नवम (इटावा)
७ प्रमोद कुमार नवम (गाजियाबाद)
८ हरिशंकर अष्टम (पिथौरागढ़)
९ प्रदीप कुमार अष्टम (कलकत्ता)
१० द्वारिका प्रसाद अष्टम (पौड़ी गढ़वाल)
११ पूरण चन्द्र अष्टम (नैनीताल)
१२ अनीत कुमार अष्टम (रामपुर)
१३ सुनीत कुमार अष्टम (रामपुर)
१४ अजय कुमार अष्टम (गोंडा)
१५ वीरेन्द्र प्रताप अष्टम (गोरखपुर)
१६ अनिल कुमार अष्टम (मुजफ्फरनगर)
१७ प्रताप सिंह अष्टम (हि० प्र०)
१८ भीम सिंह अष्टम (मेरठ)
१९ निगमपाल अष्टम (मुरादाबाद)
२० मुकेश कुमार अष्टम (दिल्ली)
२१ संजय कुमार संप्तम (फरीदाबाद)
२२ प्रदीप कुमार सप्तम (बनारस)
२३ प्रवीण कुमार षष्ठ (बिहार)
२४ अनूप कुमार षष्ठ (कानपुर)

भूमिका

गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी यह लघु पुस्तिका यज्ञ-शेष के रूप में गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय के वरिष्ठ ब्रह्मचारियों को समर्पित करते हुए हमें अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है। महर्षि दयानन्द ने आज के लगभग एक सौ वर्ष पूर्व लार्ड मैकाले द्वारा प्रदत्त भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार की प्रतिक्रिया के रूप में अपने देश, काल और परिस्थिति के अनुकूल सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय व तृतीय समुल्लास में जिस प्रकार की शिक्षा व शिक्षा पद्धति का निरूपण किया था। उसको मूर्त रूप देने के विचार से सन् १९०० ई० में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की।

स्वामी जी ने गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थियों को ऋषि-प्रणीत पद्धति पर शिक्षा देकर गुरुकुलीय छात्रों के द्वारा भारतीय जन को ब्रह्मचर्य का सन्देश दिया और सच्चरित्रता तथा सात्विकता का पाठ पढ़ाया ताकि वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्" को स्वीकार करते हुए सर्वजनहिताय अपने जीवन को समर्पित कर सकें। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि कोई संस्था इस प्रकार के सच्चरित्र नागरिक आज के युग में पैदा कर सकती है तो वह गुरुकुल है। परन्तु तभी जब गुरुकुल वस्तुतः गुरुकुल हो।

गत वर्ष २२-२ ८१ (बसन्त पञ्चमी) के अवसर पर प्राध्यापकों, शिक्षकों, ब्रह्मचारियों आदि के साथ मैं पुण्यभूमि गया था। मैंने वहाँ गुरुकुल भवन की दीवार पर लिखा एक

श्लोक देखा। यह श्लोक श्री विजयपाल शास्त्री नाम के किन्ही सज्जन द्वारा लिखा गया था। उन्होंने निम्न श्लोक के माध्यम से अपनी हार्दिक पीड़ा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

'गुरुकुलमहं दृष्ट्वा झाड़ झंखाड़' संकुलम्।
मृतात्मानमिमं मन्ये समाजं आर्य संज्ञकम्॥

श्री विजयपाल शास्त्री ने कहा था कि झाड़ झखाड़ से युक्त इस पुण्यभूमि गुरुकुल को देखकर मैं समझता हूं कि आर्यसमाज नामक संस्था मर चुकी है। हम सब पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। मेरे साथ खड़ें एक शिक्षक (प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी) ने इसे हृदयङ्गम कर लिया।

तत्पश्चात् हमने निश्चय किया कि गुरुकुल भवन का जीर्णोद्धार कराया जाय, और छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास की ओर पूरी तरह ध्यान दिया जाना चाहिए। तभी स्वामी जी के सपनों को साकार किया जा सकता है। इसी आशय से अक्टूबर १९८० में गुरुकुल विद्यालय के वरिष्ठ ब्रह्मचारियों को एक-एक मन्त्र अथवा श्लोक अर्थ सहित प्रतिदिन कण्ठस्थ कराने की परम्परा का सूत्रपात किया गया था उस तारतम्यता को श्री पं० आत्मदेव जी विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय के निर्देशन में प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी मनोविज्ञान विभाग के सक्रिय सहयोग से इस वर्ष भी जारी रखा गया। स्नातक जी ने जिस लगन, परिश्रम एवं रूचि से वेदमन्त्रों का संकलन किया व इस कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग दिया है, वह अद्वितीय है। उन्होंने तमाम मन्त्रों का पद्यानु-वाद करके छात्रों को मन्त्रार्थ याद कराने का बड़ा सफल

किया है। तत्पश्चात् श्री ईश्वर भारद्वाज आश्रमाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी ने शेष मन्त्रों का अनुवाद किया। श्री भारद्वाज नित्य प्रातःकाल ब्रह्मचारियों को मन्त्रोच्चारण का अभ्यास भी कराते हैं। वे तदर्थं धन्यवाद के पात्र हैं। संघड विद्यासभा ट्रस्ट जयपुर ने पुस्तक के प्रकाशनार्थ एक सहस्र रुपये का अनुदान दिया है। हम उनके आभारी हैं। प्रो० रामप्रसाद जी वेदालङ्कार आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन', द्वारा इसका प्रकाशन कार्य ग्रहण करके हमें अनुगृहीत किया है।

यह लघु पुस्तिका ब्रह्मचारियों को समर्पित करते हुए हुए मैं अत्यन्त हर्षित हूं। आशा है जिस लक्ष्य से इस कार्यक्रम को प्रारम्भ किया गया था उसे पूरा करने में यह पुस्तिका सर्वथा प्रभावोत्पादिनी सिद्ध होगी। गुरुकुल कांगड़ी के यह छात्र जहाँ भी जायेंगे ऋषि दयानन्द की सत्य व न्याय की पाखण्डखण्डिनी पताका प्रतिष्ठित करते हुए धर्मानुसार जीवन यात्रा में अग्रसर होंगे।

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

दो शब्द

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय श्री बलभद्र कुमार हूजा की प्रेरणा एवं सतत प्रयास से गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी प्रस्तुत कार्यक्रम सम्पन्न हो सका है। मैं जब कभी उनसे मिला, वे सदैव बड़ी रूचि से इसकी प्रगति की जानकारी करते रहे हैं। उनकी इस उत्साहवर्धिनी प्रवृत्ति से हम सभी लोगों को बड़ा बल मिला है। इस ज्ञान-यज्ञ की पूर्णाहुति के समय मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ तथा आभार व्यक्त करता हूँ।

मान्य कुलपति जी की प्रेरणा से इस "गोवर्द्धन ज्योति" के प्रकाशनार्थ "संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट" जयपुर ने आर्थिक व्यय भार वहन किया है और गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के आचार्य एवं उप-कुलपति प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार ने इसकी पाण्डुलिपि का सिंहावलोकन करके प्रकाशित कराने में अमूल्य सहयोग प्रदान किया है। आचार्य जी 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' से लघु पुस्तिकाओं के रूप में जन-जन तक वैदिक साहित्य का प्रचार एवं प्रसार करने में संलग्न हैं। 'संघड विद्या सभा ट्रस्ट' जयपुर एव आचार्य जी को मैं तदर्थ हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री जितेन्द्र जी ने मन्त्र याद करने की प्रक्रिया में छात्रों को नाना प्रकार स उत्साहित किया है। वे मेरे साथ व्यक्तिगत रूप से इस कार्यक्रम में सम्मिलित होते रहे हैं। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

विद्यालय आश्रम के वयोवृद्ध अधिष्ठाता पं० चन्द्रकेतु विद्यालंकार ने इस ज्ञान यज्ञ में बड़ी निष्ठा से भाग लिया है तदर्थ पंडित जी धन्यवाद के पात्र हैं।

अपने मित्र डा० विष्णुदत्त राकेश हिन्दी विभाग का तथा डा० हरगोपाल सिंह जी मनोविज्ञान विभाग का भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मेरी इस विषय में समय-समय पर सहायता की है।

शक्ति प्रेस के संस्थापक स्व० ठा० संसारसिंह जी के सुपुत्र श्री कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री तथा उनके मुद्रणालय के सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मेरा धर्म है उन्होंने बहुत ही अल्प समय में इसे छाप कर तैयार किया है।

वेद मन्त्रों का अर्थ पद्यानुवाद में करने का प्रयास किया गया है ताकि छात्र सुगमता से उन्हें याद कर सकें सम्भव है छन्द शास्त्र के नियमों का पूर्णतः पालन न हो सका हो एतदर्थ विद्वज्जन क्षमा करेंगे और त्रुटियों की ओर ध्यान न देंगे।

चन्द्र शेखर त्रिवेदी
(संकलन कर्ता)
लेक्चरर मनोविज्ञान विभाग

ओ३म्

मणि-माला

[शतकम्]

(हिन्दी पद्यानुवाद सहित चुने हुए वेद मन्त्र)

ओ३म् शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
॥ यजु० ३६-९ ॥

हे मित्र ! वरुण, हे न्यायकारि ! प्रभु हम सब का कल्याण करो ।
हे ऐश्वर्यों के स्वामी ! ऐश्वर्य हमें भी दान करो ॥
सर्वव्यापि महागुरु वेद का, हमें ज्ञान प्रदान करो ।
सृजक जग पालक प्रभो ! कल्याण करो ! कल्याण करो !!

— o —

(२)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
॥ ऋग्वेद—३-६२-१० ॥

सृष्टि रचयिता प्रेरक सविता, देव ज्योति के पुंज प्रभो ।
तेरी ज्योति ही वरण योग्य है, प्रतिदिन उसका ध्यान करें ।

यही ज्योति सब की बुद्धियों को, सत्कार्यों में प्रेरित करे ।
इस रथ के सारथि बुद्धि, के महा सारथि तुम ही बनो ॥

—०—

(३)

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् । आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधि महारथो जायताम् । दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ाऽनड्वा नाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् । निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ ॥ यजु० २२-२२ ॥

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्मतेजधारी ।
क्षत्री महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
होवे दुधारु गौवें, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

—०—

(४)

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं
द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥
॥ अथर्ववेद १६-७१-१ ॥

वेदमाता वर देने वाली मैंने ही प्रस्तुत की है ।
जो द्विजों को पवित्रता और प्ररणा देती है ॥
दीर्घायु, बल कीर्ति, धान्यधन, पशुधन, उत्तम संतान ।
ब्रह्मतेज मुझको अर्पित कर ब्रह्म लोक को करो प्रयाण ॥

—o—

(५)

ओ३म् नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम् ॥
ऋ० १०-१२६-१ ॥

न सत्य और असत्य था, न अन्य कोई तथ्य था ।
न धूल का भी वास था, न दूसरा आकाश था ।

न जाने क्या था ढका हुआ? किसके सहारे टिका हुआ?
वह गहन और गम्भीर-सा, लगता था जैसे नीर था।

—०—

(६)

ओ३म् न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥
॥ ऋ० १०-१२६-२ ॥

न मृत्यु था उस समय में, न ही वहाँ अमरत्व था।
न रात दिन के भेद का कोई विभाजक तत्व था ॥
था एक केवल, सङ्ग में प्रकृति के पूर्ण पुरुष ।
निश्चय ही उससे अलग, न अन्य कोई सत्व था ॥

—०—

(७)

ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
॥ यजु० ४०-१ ॥

जो कुछ इस संसार में, है ईश्वर से व्याप्त ।
मत लालच कर, भोग जो, उसके द्वारा त्यक्त ॥

—०—

(८)

ओ३म् स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषीः परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतो-
ऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
॥ यजु० ४०-८ ॥

वह सर्वत्र व्यापी प्रभो है, सूक्ष्म स्थूल शरीर रहित ।
वह सर्वज्ञ है अन्तर्यामी शुद्ध बुद्ध और पाप रहित ॥
उस दुष्ट विनाशक ने न कभी इस लोक में आकर जन्म लिया ।
किन्तु कर्मफल सब जीवों को ठीक रीति से सदा दिया ॥

—o—

(९)

ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
॥ यजु० ३१-१८ ॥

वो व्यापक दीव्य पूर्ण पुरुष तेजस्वी तम से परे है जो ।
उसका ज्ञान ही साधन है, मृत्यु से पार तिरावे जो ॥

—o—

(१०)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥
॥ यजु० ३१-११ ॥

ब्रह्म के ज्ञानी और गुणीजन मुख समान आदर पाते ।
जो बलशाली भुजा सदृश हैं वो क्षत्रिय कहलाते ॥
वैश्य सदा व्यवहार कुशल, वे जंघा सदृश हैं वेगवान ।
विद्याहीन और बुद्धिहीन, हैं पाँवों जैसे शूद्र समान ॥

—o—

(११)

ओ३म् चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत ।
श्रोताद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥
॥यजु० ३१-१२ ॥

चन्द्र है मन से सूर्य नयन से, कान से वायु प्राण ।
मुख से जन्मी अग्नि जिसके, उसी ब्रह्म को जान ॥

—o—

(१२)

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥ ऋ० ५-८२-५
यजु० ३०-३

सृष्टि रचयिता प्रेरक सविता, देव ज्योति के पुञ्ज प्रभो।
दुरितानि दुर्व्यसन दुख सब, दुर्गुण तुम ही दूर करो॥
यद्भद्रं कल्याणकारी गुण, जो भी सद्गुण जग में हों।
तन्न आ सुव उन सब से तुम, हम सबको भरपूर करो॥

(१३)

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
॥ ऋ० १०-१२१-१ ॥

हिरण्यगर्भ ज्योतिस्वरूप तुम, ज्योति तुम्हारे गर्भ में है।
आदि सृष्टि में तुम ही थे, द्यौ-भूमि धारण किए हुए।
सुख स्वरूप नही दुःख लेश, अञ्जलि मे श्रद्धा को लेकर
तुम्हें समर्पित करने के हित नतमस्तक हैं खड़े हुए।

— ०-

(१४)

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य
विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
ऋ०-१०-१२१-२

आत्मज्ञान बल देने वाले देव तेरे शासन में हैं ।
तेरी शरणागति अमृत है, तेरी अच्छाया है मौत ।
सुख स्वरूप नहीं दुःख लेश, अञ्जलि में श्रद्धा को लेकर
तुम्हें सर्मपित करने के हित नतमस्तक हैं खड़े हुए ।

—०—

(१५)

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो
महित्वै क इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋ०-१०-१२१-३

प्राणिजगत अप्राणिजगत के एकमात्र तुम राजा हो ।
अपरम्पार है तेरी महिमा, जीवमात्र के स्वामी हो ।
सुख स्वरुप नहीं दुख लेश, अञ्जलि में श्रद्धा को लेकर ।
तुम्हें सर्मपित करने के हित, नतमस्तक हैं खड़े हुए ॥

—०—

(१६)

ओ३म् येन द्यौ रुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षें रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋ०-१०-१२१-५ यजु०-३२-६

टोस भूमि द्यौ लोक उग्र स्वर्लोक मोक्ष के स्तम्भ तुम्हीं।
अन्तरिक्ष में रजःकणों के निर्माता भी तुम ही हो॥
सुख स्वरूप, नहीं दुःख लेश, अञ्जलि में श्रद्धा को लेकर
तुम्हें समर्पित करने के हित, नतमस्तक हैं खड़े हुए॥

—०—

(१७)

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥
ऋ०—१०-१२१-१०

प्रजापते! सृष्टि का स्वामी तुम बिन कोई और नहीं।
जो शुभ कामना हम ले आएँ उसको तुम ही पूर्ण करो॥
तुम सागर हो ऐश्वर्य के, एक बून्द के प्यासे हम
बूँद-बूँद भर के भी हम सब आप्त काम हो जाएंगे॥

—०—

(१८)

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा ऽ अमृत मानशानास्तृतीये
धामन्न ध्यैरयन्त॥ यजु०—३२-१०

तुम हो बन्धु पिता और माता तुम ही एक विधाता हो।
सब भुवनों के धामों के तुम एकमात्र ही ज्ञाता हो॥
तेरे ही सर्वोच्च धाम में, अमृत का भण्डार भरा
देव उसी में रमते हैं और परम तृप्त हो जाते हैं॥

—०—

(१६)

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये-
ऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो
भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम॥
॥ यजु० ५-३६ ॥

मार्ग प्रदर्शक ! सुगम मार्ग से, ऐश्वर्योन्मुख हमें करो।
तुम सर्वज्ञ सकल मार्गों के एकमात्र ही ज्ञाता हो॥
बाधाएँ जो मग में आएँ, उनसे हम संघर्ष करें।
नतमस्तक होकर तुमको, शत-शत बार प्रणाम करें॥

-०—

(२०)

ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
॥ यजु० २५-१६ ॥

जग जिसका यश गाता है, वह इन्द्र हमें वरदान करे।
इस जग का जो पोषण करता, वह सबका कल्याण करे।
वह दुख-हर्ता जगदीश्वर, सदा हमें सुखदान करे।
शास्त्र-वेत्ता, विद्या-दाता, हमें ज्ञान प्रदान करे॥

—०—

(२१)

ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये। ॥ ऋ० १-१-६ ॥

हे मार्ग प्रदर्शक परमपिता, तू है उपास्य हम पुत्रों का।
हम सब का तुम कल्याण करो, हम सब पर कृपा-दृष्टि करो॥

—०—

(२२)

ओ३म् त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा॥ ॥ ऋ० १-६१-८ ॥

हे जगती के सच्चे राजा! तुम, रक्षा करो पापियों से।
जो कर लेते मैत्री तुझसे, वे कभी भी नष्ट नहीं होते॥

—●—

(२३)

ओ३म् ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरे रीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परिषदाम मा दुवः॥

ऋग्वेद ७-४-६

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली, सब सुखों के देने वाले।
न कुछ असेवक, अज्ञानी, कायर, कुरूप हम पा सके॥
हम प्रभो जब दुर्गुणों को दूर कर देंगे सभी।
भौतिक व आध्यात्मिक ऐश्वर्य पावेंगे तभी॥

—०—

(२४)

ओ३म् न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पातत्वाय सन्त्य।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया॥

ऋ० ८-१९-२६

हे जगत्पते ! हिंसा के लिये न तुझको कभी पुकारु मैं।
न कभी किसी भी पापकर्म के लिये हृदय में धारु मैं॥
हे दुख भंजन ! न कभी कोई मेरा प्रशंसक दुखी रहे।
निष्पाप सुबुद्धि बनें सभी यह जीवन तुम पर वारु मैं॥

—०—

(२५)

ओ३म् यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ।। **ऋ० ८-४४-२३**

हे ज्योतिर्मय मैं तुझमय और तू मुझमय हो जाएँ ज्यों ।
तेरे समस्त जगत के आशीर्वाद सफल हो जाएँ त्यों ।।

—o—

(२६)

ओ३म् पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे **ऋ० ९-६१-४**

भक्ति रस से सिक्त और पावन बना अन्तःकरण ।
तुझ परम पावन प्रभु के सख्य का कर ले वरण ।।

—o—

(२७)

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।
यजु० ३२-१४

जिस सद्बुद्धि के पाने को देवादिक तरसाते हैं ।
जिसको पाकर महापुरुष भी जग में आदर पाते हैं ।।
अग्निरूप उस सद्बुद्धि का प्रभु हमें भी दान करो ।
सद्गुण बढ़े हमारे अन्दर ऐसा तुम वरदान करो ।।

(२८)

ओ३म् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ॥
अथर्व० १६-६४-१

ज्ञानाग्नि की दीप्ति करने के हित समिधा लाया हूँ ।
वह ज्ञानाग्नि मुझको श्रद्धा और मेधा का दान करे ।

—०—

(२६)

ओ३म् यस्या श्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं यः उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥
ऋ० २-१२-७

व्याप्त हैं जिससे समस्त दिशाएँ, वेगवान हैं सब जिससे ।
जो करता है प्रकट उषा को, और सूर्य की किरणों को ॥
विद्युत सदृश मेघ में रहता, और करे जलदान हमें ।
हे विद्वन् ! उसको जानो, जो सबके काम सिद्ध करता ॥

—०—

(३०)

ओ३म् यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत स जनास इन्द्रः ॥
ऋ० २-१२-९

जिसके बिना विजय नहीं पाते, जिसे युद्ध में याद करें ।
हे मानव ! सम्पूर्ण विश्व जिसके अन्दर प्रतिबिम्वित हो ॥
जो सर्वशक्ति मान अड़िग को क्षण भर मे ही डिगा देता ।
निराकार जगदीश्वर वो ही इस सृ ष्ट का स्वामी है ॥

—o—

(३१)

ओ३म् द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुः
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥
ऋ० २-१२-१३

जिसकी ओर को झुके हुए हैं, पृथ्वी और आकाश ।
मेघ जिसे रस पहुँचाते हैं, डर कर करते वास ॥
जिसके भुजा हाथ सम किरणे करती हैं नित काम ।
जानो सूर्य स्वरुप ब्रह्म को अखिल गुणों का धाम ॥

—o—

(३२)

ओ३म् अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं
न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन ॥
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु
न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥

ऋ० १०-४८-५

ऐश्वर्यवान् मैं जीव इन्द्र हूँ दीन हीन कहता है कौन ?
मैं अजेय हूं, अजर अमर हूँ, मुझे मिटा सकता है कौन ?
आत्मज्ञान शुभ कर्म सोमरस, का जो करते निशदिन पान ।
मुँह माँगे वैभव का मुझ से, पाते हैं वे शुभ वरदान ॥
मेरे साथ मित्रता करके, मेरे मित्र जो बन जाते ।
वे मानव देवत्व प्राप्त कर अविनाशी पद को पाते ॥

— o —

(३३)

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद–
बाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते
तवानागसो अदितये स्याम ॥

॥ ऋ० १-२४-१५ ॥

यह जीव अविद्या के कारण शुभ अशुभ कर्म जो करता है।
हे न्यायकारि ! न्यायालय में जो करता है सो भरता है ॥
इस अन्धकार से युक्त हृदय में, हे ज्योति रूप ! ज्योति भरो।
दूर कर इसकी मलिनता दोष रहित निष्पाप करो ॥

—०—

(३४)

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्यु राचके। ऋ० १-२५-१६, यजु० २१-१ ॥

शरणागत की हे वरुण ! सुन लो आज पुकार ।
रक्षा कर सुख दो मुझे, करो मेरा उद्धार ॥

—०—

(३५)

ओ३म् प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो
यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे
मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥
ऋ० १-८५-१ ॥

वीर और गतिशील मरुत् सत्कर्म सदा ही करते हैं।
उस दुष्ट विनाशक के पुत्रों से सभी शत्रुगण डरते हैं ॥

द्युलोक और पृथ्वी को भी जो करके वृष्टि बढ़ाते हैं।
वे प्रसन्न हों, नारी सदृश जो कि निज अङ्ग सजाते हैं ॥

—०—

(३६)

ओ३म् वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः
प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा
वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥
ऋ० १-८५-४ ॥

यज्ञ कर्म करने वाले, और शस्त्र सुशोभित
जिनके बल से बड़े-बड़े पर्वत गिर जाते।
मन के वेग सदृश, गति है जिनके रथ की
वे शत्रुजित् मिल कर जग का उपकार करें ॥

—०—

(३७)

ओ३म् अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः
स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू
रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥
ऋ० ५-८३-१ ॥

करो प्रशंसा बली मेघ की, जो जग का है जीवन दाता।
अन्नादि और औषधियों के हित आकर जो जल बरसाता ॥
वृष सदृश गम्भीर गिरा में, साहस जो करता प्रदान।
करो स्तुति उस पर्जन्य की, इसी रूप में हे विद्वान् ॥

—o—

(३८)

ओ३म् यस्य व्रते पृथिवी नं नमीति
यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत औषधीर्विश्वरूपाः स नः
पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥
ऋ० ५-८३-५ ॥

पृथ्वी जिसको नमन करे और पशुगण आशाएँ रखें।
जिसके लिये वनस्पतियाँ भी नाना औषध रूप धरें।
वह प्रिय मेघ शांति सुख और समृद्धि का दान करे।

—o—

(३९)

ओ३म् मासां राजा वरुणो याति मध्ये
सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावक
स्ताआपो देवीरिह मामवन्तु ॥
ऋ० ७-४९-३ ॥

धर्माधर्म विचार सभी को, फल देता जगदीश्वर जो।
वह सर्वव्यापी जल रूप ईश ही सदा मेरी रक्षा करे ॥

—०—

(४०)

ओ३म् अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृडा सुक्षत्र मृडय ॥ ऋ० ७-८६-४ ॥

प्यासा हूँ जल बीच में, प्रभु मेरा कल्याण करो।
सर्वसुखकारी दयालु, हमें भी सुख प्रदान करो ॥

—०—

(४१)

ओ३म् पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥
ऋ० ६-८३-१ ॥

तेरी पवित्रता विश्वपते, जग के कण-कण में फैली है।
तप से न तपाया है तन मन, जिसने वह उसको क्या पाए ?
जिसने परिपक्व किया तन मन, वह ही पवित्र हो जाता है।

—०—

(४२)

ओ३म् वयं सोम व्रते तवमनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ऋ० १०-५७-६ ॥

सोम्यरूप प्रभु शक्तिशाली मन, तुमने हमें प्रदान किया।
जिससे तेरे कठिन व्रतों का हम सब परिपालन कर लें ॥

—०—

(४३)

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४-१ ॥

जो जाग्रत स्वप्नावस्था में भी दूर-दूर तक जाता है।
ज्योति वाले सब तत्वों से बढ़ कर ज्योति का दाता है।
इस कारण बुधजन देते हैं, इसकी उपमा दर्पण से
दिव्य गुणों वाला वह मेरा, मानस शुभ संकल्पी हो ॥

—●—

(४४)

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो

यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

यजु० ३४-२ ॥

कर्मयोगी जन तथा मनीषी जिससे यज्ञ रचाते हैं ।
धीर ज्ञानी योगिजन जिससे ज्ञानकाण्ड में रमते है ॥
जीवों के अन्तर्मन में जो यक्ष अनूठा बना हुआ
याज्ञिक कर्म वाला वह मेरा मानस शुभ संकल्पी हो ।

—o—

(४५)

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च

यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।

यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

यजु० ३४-३ ॥

ज्ञान भावना स्मृति शक्ति इन सबके उद्गम तुम ही हो ।
जीवों के अन्तःकरणों में अमृत ज्योति जगाते हो ।

जिसके बिना कोई भी जग में कार्य कभी नहीं हो पाता।
दिव्य गुणों वाला वह मेरा मानस शुभ संकल्पी हो॥

—०—

(४६)

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥
यजु० ३४-४

भूत भविष्यत् वर्तमान इन सबके तुम परिगृहीता हो।
सबके अन्तः करणों में तुम अमृत ज्योति जगाते हो॥
ज्ञानेन्द्रियाँ मन बुद्धि सातों मिलकर यज्ञ रचाते हैं।
ज्ञान-यज्ञ-कर्ता वह मेरा मानस शुभ संकल्पी हो।

—०—

(४७)

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूँषि
यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
यजु० ३४-५

जैसे आरे पहिए की नाभि मे रहते जुड़े हुए।
वैसे ही ऋक् यजु साम हैं मन-नाभि से जुड़े हुए।

सब जीवो का चेतस भी है मन के साथ ही जुड़ा हुआ ।
दिव्य गुणों वाला वह मेरा मानस शुभ संकल्पी हो ॥

—०—

(४८)

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने-
नीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४-६

अच्छा सारथि ज्यों लगाम से गोड़ों को ले जाता है ।
वैसे ही यह मन मानव को इधर-उधर ले जाता है ।
हृत्प्रतिष्ठ हृदय में स्थित यह, अति चंचल है अजर अमर ।
दिव्य गुणों वाला वह मेरा मानस शुभ संकल्पी हो ॥

—०—

(४९)

ओ३म् व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥
यजु० ३०-९

व्रत से दीक्षा, उससे दक्षिणा, मिलती है यह तथ्य ।
उससे श्रद्धा उत्पन्न होनी श्रद्धा से हो सत्य ॥

—०—

(५०)

ओ३म् श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥

ऋग्वेद १०-१५१-१

श्रद्धा से ही ज्ञान की अग्नि नित प्रदीप्त की जाती है।
श्रद्धा से ही यज्ञादि में आहुति डाली जाती है ॥
भक्ति मार्ग में भी श्रद्धा ही प्रमुख भाग ले जाती है।
वेद शास्त्र सर्वत्र सदा ही श्रद्धा के गुण गाते हैं ॥

—o—

(५१)

ओ३म् प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥

ऋग्वेद १०-१५१-२

मेरा उदय दान के इच्छुक व दानी के हृदय में हो।
मेरा उदय यज्ञ भोज के कर्ता के भी दिल में हो ॥

—o—

(५२)

ओ३म् यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥

ऋ० १०-१५१-३

जिस प्रकार धन विजय के इच्छुक श्रद्धा बली पर रखते हैं।
उसी तरह से दानी और पालक में हमारा उदय करो ॥

—०—

(५३)

ओ३म् श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धा हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥
ऋ० १०-१५१-४

तेजस्वी बलशाली याज्ञिक करें श्रद्धोपासना ।
देती है परमैश्वर्य को, हृदय की सत्धारणा ॥

—०—

(५४)

ओ३म् श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे ! श्रद्धापयेह नः ॥
ऋ० १०-१५१-५

प्रतिदिन के पावन प्रभात में, हम तेरा आह्वान करें ।
दिन के मध्यकाल में भी हम तेरा ही गुणगान करें ॥
सूर्यास्त होने पर निशि में भी तेरा सम्मान करें ।
हे श्रद्धे ! जीवन श्रद्धामय बने यही वर लाभ करें ॥

—०—

(५५)

ओ३म् यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
अथर्व० १०-८-१

जो भूत भविष्यत् वर्तमान सबका है एक अधिष्ठाता ।
जो है केवल आनन्दरूप उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार ॥

—०—

(५६)

ओ३म् यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ॥
अथर्व० १०-८-१६

जिससे सूर्योदय होता और अस्त भी जिसमें होता है ।
सर्वश्रेष्ठ है ब्रह्म वही उससे बढ़कर कोई भी नहीं ॥

—०—

(५७)

ओ३म् विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदो भयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥
यजु० ४०-१४

विद्या और अविद्या का जो ज्ञान साथ ही पाता है।
जीत अविद्या से मृत्यु विद्या से अमरता पाता है॥

—०—

(५८)

ओ३म् हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन अपावृणु, सत्य धर्माय दृष्टये॥
यजु० ४०-१७

चमकदार सुवर्णपात्र से, सत्य का मुख है ढ़का हुआ।
तू इसका आवरण दूर कर, शुद्ध सत्य के दर्शन हों॥

—०—

(५९)

ओ३म् ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तत् विदुः त इमे समासते॥
ऋ० १-१६४-३९

करो ध्यान उस अक्षर ब्रह्म का, गाती जिसको,वेद ऋचाएँ।
सभी देव उस महादेव अविनाशी प्रभु में आन समाएँ॥

उस महादेव को जाने बिन यह ऋचा का गायन है निष्फल।
ज्ञानी जन हों लीन ब्रह्म में तब परमानन्द पाते हैं ॥

—०—

(६०)

ओ३म् गायन्ति त्वा गायत्रिणो अर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतो उद्वंशमिव येमिरे ॥

ऋ० १-१०-१

सामवेद के गायक तेरे मधुर गीत ही गाते हैं ।
वेद ऋचाएँ तेरी स्तुति मधुर कण्ठ से करती हैं ॥
ज्ञानी और कर्मयोगी सब तेरी महिमा गाते हैं ।
अपरम्पार है तेरी महिमा उसका पार न पाते हैं ॥

—०—

(६१)

ओ३म् सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्तरक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र
जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ चदेवौ ॥

यजु० ३४-५५

देह गेह है सप्त ऋषि का, जिसमें स्थित हैं सात ऋषि ।
जो प्रमाद से रहित ही रहकर, इसकी रक्षा करते हैं ।।
सप्तर्षि तो सुषुप्तिकाल में तमोलीन हो जाते हैं ।
प्राणापान तो उस वेला में भी जाग्रत ही रहते हैं ।।

—०—

(६२)

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये ।
चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ।।

यजु० ३६-१

ऋक् यजु साम वाक् मन प्राण औ ज्ञान कर्म उपासना ।
करुं प्राप्त तुझ पूर्ण पुरुष का तेज सकल परमात्मा ।।
प्राणापान आदान विसर्ग क्रिया मे शुद्ध जीवन हो ।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य बनूं मैं तुझ समान परिपूर्ण हो ।।

—०—

(६३)

ओ३म् अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो-
रात्मानं धीरमजरं युवानम् ।।

अथर्व० १०-८-४४

आत्म तत्व अमृत अकाम है, धीर स्वयंभू भी वह है।
सर्व दिशा से तृप्त है रस से किसी और से न्यून नहीं है॥
अजर युवक धीर तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर
मृत्यु से भयभीत न होकर मृत्युञ्जय बन जाता है॥

—०—

(६४)

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
ऋ० १-५०-१०॥

अन्धकार से ऊपर उठकर, ज्योतिमार्ग की ओर बढ़ें।
अंतरिक्ष से उठ सर्वोत्तम, सूर्य ज्योति का दर्श करें॥

—०—

(६५)

ओ३म् त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः। ऋ० १-६१-६॥

तुम जीवित रखना चाहो तो, कोई भी मार नहीं सकता।
प्रिय भक्त सदा निर्भय होकर, तेरे प्रिय गीत ही गाते हैं॥

-०—

(६६)

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥
ऋ० ५-५१-१५ ॥

चन्द्र सूर्य की भाँति प्रभो कल्याण मार्ग के पथिक बनें ।
ज्ञानी दानी और अहिंसक जन के सहयोगी ही रहें ॥

—•—

(६७)

ओ३म् यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवाऽनुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
यजु० ४०-६ ॥

सब भूतों का आत्मा में और आत्मा का सब भूतों में ।
जब अनुदर्शन होता है, तब द्वैत भाव मिट जाता है ॥

—०

(६८)

ओ३म् यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूत् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥
यजु० ४०-७ ॥

विज्ञानी की दृष्टि में सब, आत्मरुप हो जाते हैं ।
मोह शोक से ऊपर उठ वह समदर्शी . हो जाता है ॥

—०—

(६९)

ओ३म् यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्येष्ठ मुपासते ।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥
अथर्व० १०-७-२४

ब्रह्म ज्ञानी जिस रूप में उस की करें उपासना ।
जानता प्रत्यक्ष जो ज्ञानी उसी को मानना ॥

—०—

(७०)

ओ३म् ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे
तस्मिन् देवा संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स ॥
आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥
अथर्व० ११-५-१

ब्रह्मचारी जब ब्रह्म खोजने, द्यौ पृथ्वी में विचरता है ।
ईश्वर की सब दिव्य शक्तियाँ, तदनुकूल हो जाती हैं ॥

बाहर के द्यौ पृथिवी का वह, पिंड में दर्शन करता है।
आचार्य का निज तप से वह तब परितर्पण करता है॥

—•—

(७१)

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

अथर्व०-११-५-१७

ब्रह्मचर्य तप से ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है।
गुरुकुल का आचार्य इसी से ब्रह्मचारी अपनाता है॥

—•—

(७२)

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

अथर्व०-११-५-१९

ब्रह्मचर्य के शुभ प्रताप से उग्र तपस्या के बल से।
विद्वानों ने मार भगाया मृत्यु को अपने सिर से।
जीवात्मा अपने तन मन को, इसी से सुख से भरता है॥

—•—

(७३)

ओ३म् यस्माहृते न सिध्यति यज्ञोविपश्चितश्चन ।
स धीनां योगमिन्वति ॥

ऋ० १-१८-७

बड़े बड़े विद्वानों का भी, यज्ञ सिद्ध नहीं होता,
जिसकी कृपा बिना, वह सविता मुझे सुबुद्धि प्रदान करे।

—०—

(७४)

ओ३म् चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वती मनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्टया सहस्रमयुता ददत् ॥

ऋ० ८-२१-१८

वह शक्तिमान परमेश्वर ही हैं सब ऐश्वर्यों का दाता।
मेघ सदृश इन राजाओं, का भी वह पालन करता ॥

—०—

(७५)

ओ३म् प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये ॥

अथर्व० १६-६२-१

द्विजों और क्षत्रियों का हे प्रभो ! तुम प्यारा करो।
जो भी देखे, शूद्र हो या, आर्य का प्यारा करो ॥

—•

(७६)

ओ३म् पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना
सिन्धुर्नक्षोद उर्विया व्यश्वैत् ॥
अभिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य
चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥
ऋ० १-६२-१२

पाकर पशुधन जिस प्रकार से वैश्य समृद्धि पाता है।
वेग नदी का जल पाकर के जिस प्रकार बढ़ जाता है।
उसी तरह से इस सृष्टि का हर प्राणी इस लोक में
देवी ऊषा के संग से ऐश्वर्यवान् हो जाता है।

—•—

(७७)

ओ३म् उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधि-
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥
ऋ० ३-६१-१

जिस प्रकार से ज्ञानवती वरणीय देवी ऊषा आकर।
सत्कर्मों में प्रेरित करती है जो अपने दिव्य गुणों से ॥
उसी भाँति हे सुन्दर युवती ज्ञानवती पतिव्रता होकर।
करो सदा अनुकूल कार्य पति की होवे उन्नति जिसमें ॥

— o —

(७८)

ओ३म् अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य
यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहु
र्नजानीमो नयता बद्धमेतम् ॥
ऋ० १०-३४-४

नाश करे जिसका जुआ, उसको कौन बचाय ।
पत्नी को परामर्श दें, अन्य दूसरे आय ॥
मात पिता भाई सगे लेते आँख चुराय ।
कहते हम नहीं जानते बाँध इसे ले जाय ॥

—o—

(७६)

ओ३म् अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥
ऋ० १०-३४-१३

जुआ कभी खेलो नहीं, करो कृषि दत्त चित्त ।
उसमें हो सन्तुष्ट जो, मिला श्रम से वित्त ॥
मिला श्रम से वित्त वही सच्चा धन मानो ।
गार्हस्थ्य-सुख और इसी में पशुधन जानो ॥
कहा प्रभु ने मुझे, सुखी होगे तभी ।
सत्याचरण करो, न खेलो जुआ कभी ॥

—०—

(८०)

ओ३म् वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥
सामवेद पूर्वार्चिक ६-३-१३-२

दाता ने जो भी दिया सभी समय अनुकूल ।
जहाँ वसन्त प्यारा लगे, वहीं ग्रीष्म की धूल ॥

वहीं ग्रीष्म की धूल भी मन को हरषाती है।
प्राणदायिनी वर्षा अमृत बरसाती है ।
शीत और हेमन्त सदा सुख लेकर आता ।
शिशिर होय सुखदायी कृपा जो करते दाता ॥

—o—

(८१)

ओ३म् अप्रतीतो जयतिसंधनानि
प्रतिन्जयान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति
ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥
ऋ० ४-५०-६

वैयक्तिक सामूहिक सम्पदा केवल वे जन पाते ।
जो न कभी कर्तव्य मार्ग से पीछे कदम हटाते ॥
जो राजा पूजा करता है, सदा सत्य ब्राह्मण की।
और अडिग रहे न्याय मार्ग पर देव भी उसे बचाते ॥

—o—

(८२)

ओ३म् जिह्वया अग्रे मधु मे जिह्वमूले मधूलकम् ।
ममेदह कृतावसो मम चित्तमुपायसि ॥
अथर्व०-१-३४-२

हो मिठास जिह्वाग्र भाग में, कण्ठ-स्वर भी सुरीला हो ।
ज्ञान-कर्म में आकर्षण हो, जीवन हो माधुर्य भरा ॥

—०—

(८३)

ओ३म् शतहस्त समाहर सहस्र हस्त संकिर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥
अथर्व०-३-२४-५

तू संग्रह कर सौ हाथों से कर दान हजारों हाथों से ।
ऐसे अपने पिछली अगली तू नेक कमाई बढ़ाए जा ॥

—०—

(८४)

ओ३म् मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि बध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ॥
ऋ०-१०-११७-६

बुद्धिहीन जन-जीवन भर जो अन्न का संग्रह करता है।
सच जानो वह संग्रह उसके जीवन का वध करता है।
जो देवों ओं' प्राणिमात्र का नहीं करता पोषण अन्न से।
अन्न नहीं खाता वह, वह तो केवल पाप ही खाता है।।

—o—

(८५)

ओ३म् भद्रमिच्छन्त ऋषयः
स्वर्विदस्तपो दीक्षा मुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं,
तदस्मै देवा उपसं नमन्तु।।
अथर्व०-१६-४१-१

आत्मानुभवी ऋषियों ने जब कल्याण की इच्छा की।
तब पहले घोर तपस्या की और दीक्षा भी ग्रहण किया।।
इनसे ही राष्ट्र का जन्म हुआ, वह ओजस्वी बलवान बना।
ए राष्ट्रनिबासी विद्वानो ! श्रद्धा स राष्ट्र को नमन करो।।

—o—

(८६)

ओ३म् परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्
परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च।
उपस्थाय प्रथम जामृतस्यात्
मनात्मानमभि सं विवेश।।
यजु० ३२-११।।

हे मानव कर धर्म आचरण करो प्राप्त वेदों का ज्ञान।
सम्यक् दृष्टि दशों दिशाओं में होवें सब जीव समान॥
उसका सत्य स्वरूप सभी लोकों में वही देख पाता।
जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो सुख पाता वह ब्रह्म ज्ञाता॥

—•—

(८७)

ओ३म् मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः
पूता भवत यज्ञियासः॥
ऋ० १०-१८-२॥

मृत्यु को कर दूर अमर बन जाओ।
दीर्घायु सन्तान और धन पाओ॥
किन्तु यह सब तभी मिलेगा मानव।
होवे तन मन शुद्ध व याज्ञिक जीवन॥

—•—

(८८)

ओ३म् विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां
विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्।
अग्निर्देवानामव आवृणानः
समृडीको भवतु जातवेदाः॥
ऋ० ४-१-२०॥

यज्ञाग्नि में सभी देवगण आकर करें निवास।
किन्तु स्वयं यह बनकर अतिथि आया अपने पास।
अतिथि बनकर हवि ग्रहण कर देवों तक ले जाता।
प्रतिफल में देवों का आशीर्वाद हमें दे जाता॥
सभी अभीष्ट ऐश्वर्यों से युक्त सदा यह होवे।
हे प्रभो ! सब सुख प्रदायक और माँगलिक होवे॥

—०—

(८९)

ओ३म् इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥ ऋ० ८-२-१८॥

यज्ञ कर्म करने वालों को देव सर्वदा चाहते हैं।
आलसी और प्रमादी को वे सीधी राह पर लाते हैं॥

—०—

(९०)

ओ३म् न तं विदाथ य इमा जजा-
माऽन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या
चाऽसुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥
ऋ० १०-८२-७॥

जो शास्त्र-पाठ नहीं करते, औ' व्यर्थ की बातें करते हैं।
वे शब्द जाल में फँसे हुए, अपने को पण्डित कहते हैं॥

अपने पेट को भरना ही, जीवन का लक्ष्य समझते है।
वे जानें कैसे उस प्रभु को, जो सब भुवनों को रचते हैं ॥

—०—

(६१)

ओ३म् कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य
चक्रा भुवनानि विश्वा ॥
अथर्व० १६-५३-१ ॥

काल-अश्व भुवनों लोकों की बागडोर को लिए हुए ।
निज बल से संचालित करता है सृष्टि का स्यंदन ।
चक्र हैं उसके सभी वस्तुएँ जो भी इस सृष्टि में हैं।
लक्ष्य प्राप्त करते केवल कर्तव्य - निष्ठ ज्ञानी जन ॥

—०—

(६२)

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्ष-
मभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्ता-
दुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥
अथर्ववेद १६-१५-५ ॥

अन्तरिक्ष द्यौ पृथ्वी सबको सदा अभय का दान करें।
पीछे, आगे, ऊपर, नीचे के भय से हम दूर रहें।।

—०—

(६३)

ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रा
दभयंज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।
अथर्ववेद १६-१५-६ ।।

मित्र अमित्र अपरिचित परिचित सदा अभय का दान करें।
रात-दिवस भयभीत करें न सर्व दिशाएँ मित्र बनें ।।

—०

(६४)

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं न कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।।
यजु० ३६-२२ ।।

जिस जिस व्यक्ति वस्तु से चाहो हमें अभय का दान करो।
प्राणिमात्र पशुओं से भी तुम हमें अभय का दान करो।।

— ०-

(६५)

ओ३म् ये रुपाणि प्रतिमुञ्चमाना-
ऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्ति
अग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥
यजु० २-३०

विचर रहे हैं इस भू पर जो असुर छुपा कर अपना रूप ।
निज स्वार्थ के वश होकर जो अधर्माचरण करते हैं ।
इस लोक से हे जगदीश्वर, उन सब ही को दूर करो ॥

—•—

(६६)

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवा
भद्रंपश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
ऋ० १-८६-८ ॥

कानों से हम भद्र सुनें औ' भद्र ही आंखों से देखें ।
प्रभु से निश्चित की आयु को स्वस्थ शरीर से हम भोगें ॥

—०—

(९७)

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥
यजु० ४०-२ ॥

'कर्म ही अधिकार है' यह हृदय में धरते हुए ।
सौ वर्ष जीवित रहो कर्तव्य निज करते हुए ॥
इस लोक में न दूसरा मार्ग कोई इससे अलग ।
कर्तव्य पालक ही जगत में पाप से रहता विलग ॥

—o—

(९८)

ओ३म् कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद्भूयासमश्वजिद्धनञ्जयो हिरण्यजित् ॥
अथर्ववेद ७-५०-८ ।

दाएँ हाथ में कर्म मेरे तो विजय रहेगी बाएँ हाथ ।
फिर पृथ्वी धन स्वर्ण अश्व सब जीत सकूँगा एक साथ ॥

—o—

(९९)

ओ३म् अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥
अथर्ववेद १०-८-३२ ॥

अङ्ग सङ्ग का त्याग नहीं और अति समीप का दर्श नहीं ।
यह वेद है काव्य देव का अजर अमर और अद्भुत है ॥

—०—

(१००)

ओ३म् समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
ऋ० १०-१९१-४ ॥

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख-सम्पदा ॥

—०—

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ओ३म् शान्तिः । शान्तिः ॥ शान्तिः ॥।

पूर्ण वह परमात्मा और जगत यह पूर्ण ।
पूर्ण से होता उदित, है जो वह भी पूर्ण ॥
पूर्ण से यदि ले लिया, उसका भी सम्पूर्ण ।
शेष रहेगा पास में, फिर भी उसके पूर्ण ॥

ओ३म् शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

—०—